जैसलमेर एक सुनहरा शहर

इस लेख का पहला हिस्सा *चकमक* के मई अंक में छपा था। प्रस्तुत है बाकी हिस्सा...

सम

जैसलमेर से 45 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में सम है। जहाँ दूर-दूर तक बिखरे रेत के टीले हैं। तेज़ हवाओं से रेत की ऊपरी सतह हमेशा हिलती रहती है और उस पर लहरों जैसी धारियाँ पड़ जाती हैं। एक छोटी झाड़ी या पत्थर में भी रेत को रोकने की क्षमता होती है। रेत भारी होती है इसीलिए हवा उसे ज़्यादा ऊपर तक नहीं उठा पाती है। रास्ते में किसी भी रुकावट के आने से कुछ रेत वहीं गिर जाती है और धीरे-धीरे टीले में बदल जाती है। तेज़ हवाओं से इनका स्वरूप हमेशा बदलता रहता है।

बार्डर रोड ऑर्गनाईज़ेशन (बी.आर.ओ.) की सड़क हमें सम मरुभूमि तक ले गई। मीलों तक लगभग समतल मैदान, कुछ चट्टानें, झाड़ियाँ और बारिश की कमी से सूखी घास... आबादी का नामोंनिशान नहीं। भेड़-बकरियाँ सूखी घास पर चर रही थीं। यहाँ के चरवाहों का जीवन बहुत ही मुश्किल होता है। सारा जीवन एक से दूसरे चरागाह की खोज में बीत जाता है। मैं सोचने लगी कि यही सुन्दर सड़क दो महीने बाद कितनी दुखदाई हो जाएगी। तेज़ गर्मी, चिलचिलाती धूप और पानी का नामोंनिशान नहीं। फरवरी के अन्त से सैलानियों की संख्या कम होने लगेगी। साथ ही आमदनी का एक बड़ा ज़रिया भी कई महीनों के लिए बन्द हो जाता है।

कुछ दिन पहले जैसलमेर के आसपास बारिश हुई थी। सभी गड्ढे पानी से भरे थे। हमारी जीप का ड्राईवर इस बारिश से बेहद नाखुश था। कहने लगा, "इस बारिश का क्या फायदा? अभी न तो ज्वार, बाजरा ही बो सकते हैं और न ही ग्वार...। शायद कुछ घास उग जाए बस... । सारा पानी बेकार चला गया।"

सम से कुछ पहले से ही ऊँटों के झुण्ड नज़र आने लगे। कुछ सैलानी ऊँटों पर बैठकर राष्ट्रीय मरू उद्यान की सैर करते हैं, तो कुछ टीलों तक ही जाते हैं। हमने भी एक ऊँट ले लिया। ऊँटवाला दिलबर खान पास के एक गाँव का था। ज़्यादातर ऊँटवाले उसी गाँव से यहाँ आते हैं। उसने हमें इस इलाके के बारे में बहुत कुछ बताया।

यहाँ एक ऊँट सात से दस हज़ार तक का होता है। 2-3 साल की उमर से उसे सिखाना पड़ता है – कैसे चलो, कब रुको वगैरह। ऊँट को एक दिन में लगभग 20 किलो चारा चाहिए। पिछले दो साल के सूखे की वजह से यहाँ हालात काफी खराब हैं। उसके अपने गाँव में 40 ऊँट भूख से मर गए। दिलबर भरे दिल से बोला, "मैडम इन्सान के लिए अनाज नहीं है तो जानवर के लिए ग्वार कहाँ से लाएँ? आप लोग यहाँ घूमने आते हैं तो दो-चार पैसे कमा लेते हैं, नहीं तो शहरों में मज़दूरी के लिए भटकते रहते हैं।"

उसकी बातें सुनते-सुनते हम काफी दूर तक चले गए। अब हमें राष्ट्रीय मरू उद्यान की तार वाली बाड़ नज़र आ रही थी। बाड़ के उस पार एक ऊँट बैठा था और एक औरत उसे कुछ खिलाने की कोशिश कर रही थी। पता चला कि ऊँट कल रात से वहीं बैठा है। भूख से मर रहा है। दिलबर ने बताया कि ऊँट जब बैठ जाता है और उठने से इंकार कर देता है तब समझ लो उसका आखिरी समय आ गया है।

रेत के इन टीलों पर कुछ काफी ऊँची झाड़ियाँ थीं, सभी एक तरह की। ऊँट से भी ऊँची। इन्हें देख मैं हैरान रह गई। दिलबर खान ने इसका नाम आकड़ा बताया। मैं इसे बचपन से आक के नाम से जानती हूँ। दिल्ली, यू. पी. में यह एक छोटी झाड़ी की तरह होता है – मुश्किल से दो-ढाई फुट ऊँचा। बचपन में हम आक के पत्तों से मोनार्क तितली के लार्वा को पकड़कर बोतल में पाला करते थे। उसके खाने के लिए आक का पत्ता बोतल में डाल दिया करते। लार्वा प्यूपा में बदलकर बोतल के ढक्कन से लटका रहता। फिर कुछ दिनों बाद उस में से तितली निकलकर उड़ जाती। हम भागकर अम्मा जी को बताते जो हमेशा नई-नई चीज़ें करने के लिए हमें उत्साहित किया करती थीं।

आकल जीवाश्म पार्क

आकल वुड फॉसिल (जीवाश्म) पार्क

अगले दिन सुबह ही हम वुड फॉसिल (जीवाश्म) पार्क देखने निकल गए। यह जैसलमेर के पूर्व में कोई 17 किलोमीटर की दूरी पर है। आकल के रास्ते में मवेशियों का एक बाड़ा दिखा। जीप के ड्राईवर ने बताया कि सूखे की वजह से घास बिल्कुल नहीं है। जानवर मर रहे हैं। किसी संस्था ने सरकार की मदद से जानवरों को चारा खिलाने के लिए बाड़ा बनाया है। गरीब किसान अपने मवेशियों को यहाँ छोड़ जाते हैं। फिर इन जानवरों पर उनका कोई अधिकार नहीं रहता।

ये मवेशी क्या बस कंकाल भर थे। बाड़े में 3-4 मवेशी मरे हुए थे। भयावह था उन्हें देखना। मेरी नज़रों से अभी सम के दम तोड़ते ऊँट की छवि हटी नहीं थी और ये...। रास्ते में कई और जगहों पर मरे जानवर नज़र आए। ये तो जीव थे। हमारे यहाँ तो इन्सान भी कई बार इन्हीं हालातों में दम तोड़ देते हैं।

देश की आज़ादी के पचास साल बाद भी हम अनाज और चारे की पैदावार क्यों नहीं बढ़ा पाए हैं? यह प्रश्न काफी देर तक दिमाग में घूमता रहा। इस मरुभूमि में जहाँ घास तक नहीं है वहाँ लकड़ी के जीवाश्म होना कुछ अजीब है ना! राजस्थान के जैसलमेर और बाड़मेर ज़िले में लगभग 3162 वर्ग किलोमीटर में फैला है राष्ट्रीय मरू उद्यान। यह 1981 में स्थापित हुआ था। अब वुड फॉसिल पार्क भी इसी में आता है। फॉसिल पार्क पथरीली ज़मीन में है। कहीं ऊँची-नीची पहाड़ियाँ तो कहीं घास और झाड़ियाँ नज़र आ रही थीं। पहाड़ी पर खड़े होकर जहाँ तक देख पा रही थी सब तरफ यही नज़ारा था। यहाँ खड़े होकर यह कल्पना तक कर पाना मुश्किल था कि किसी समय यहाँ घने जंगल हुआ करते थे। लेकिन हमारी पृथ्वी के इतिहास में ऐसा कई बार हुआ है और आगे भी होता रहेगा। यह जानती हूँ, फिर भी हैरानी होती है।

पास ही एक तख्ती लगी थी। उस पर लिखा था कि आज से 18 करोड़ साल पहले इस इलाके में उष्ण और काफी नम जलवायु थी। यहाँ घने जंगल थे। चीड़, देवदार और रेड वुड यहाँ खूब उगते थे। भूगर्भ तालिका के हिसाब से यह जुरासिक युग माना जाता है। इसी समय पृथ्वी पर पक्षियों का विकास हुआ और डाइनोसॉर पाए जाते थे।

आकल वुड पार्क में कोई 18 जीवाश्म हैं। इनमें से सबसे बड़ा तना 13 मीटर लम्बा और 1 मीटर चौड़ा है। टीन की छत के नीचे प्लास्टिक की चादर के केबिन में इन्हें बन्द कर रखा है। गर्मी और धूप से प्लास्टिक पीला पड़ गया है, जगह-जगह से टूट रहा है और भीतर झाँकने पर कुछ भी ठीक से दिखाई नहीं देता।

अगले दिन गाड़ी दोपहर तीन बजे की थी लेकिन रेल टिकट में कुछ गड़बड़ थी। स्टेशन पर ही काफी वक्त चला हो गया। देखने को काफी कुछ बचा था। अगर कुछ और दिन होते तो जैसलमेर और आसपास सब कुछ आराम से देखा जा सकता है। और शायद फरवरी के पहले हफ्ते में आते तो दिन इतने गर्म न लगते। पर खैर इतनी तसल्ली थी कि अगली बार तो आया ही जा सकता है।

शैहला हाशमी

सीधा थार-रेगिस्तान से...

एक बार की बात है। एक आदमी जिसका नाम था बिरधीचन्द, ऊँट पर बैठकर अपने घर जा रहा था। रास्ते में रेत का तेज़ तूफान आया। इस वजह से वो पिछले दो दिन से अपने घर से कुछ कोस दूर अटका पड़ा था। कुछ देर में तूफान रुक गया। अब वह फटाफट अपने घर पहुँचना चाहता था। आखिर घर में सब उसकी राह देखते होंगे। रेत के ऊँचे-ऊँचे टीलों के बीच से होती हुई उसकी सवारी शान से चली जा रही थी। तभी उसने देखा कि सामने के टीले पर एक गोल टोपी रखी है। इस सुनसान बियाबान में कौन अपनी टोपी छोड़ गया। बिरधीचन्द ने आस-पास नज़रें दौड़ाईं। दूर-दूर तक कोई नहीं दिखा। बिरधीचन्द ने सोचा चलो टोपी उठा लेते हैं। लगता है यहाँ से गुज़रता कोई मुसाफिर इस बियाबान में अपनी नई-नवेली टोपी गिरा गया है।

घड़सीसर का तालाब

चित्रः दिलीप चिंचालकर

नक्शे में जितना बड़ा शहर जैसलमेर है, लगभग उतना ही बड़ा तालाब घड़सीसर है। घड़सीसर न होता तो जैसलमेर भी न होता। लगभग 800 साल पुराने इस शहर के कोई 700 साल इस तालाब से जुड़े हैं। 3 मील लम्बे और 1 मील चौड़े आगर (जहाँ पानी इकट्ठा होगा) वाले इस तालाब का आगौर (जहाँ से पानी आएगा) 120 वर्ग मील क्षेत्र में फैला है। इसे आँखें नाप नहीं पाती हैं। जैसलमेर के राजा महारावल घड़सी ने इसे 1335 में बनवाया था। राजा खुद ऊँचे किले से उतरकर यहाँ आते और खुदाई, भराई जैसे सब काम देखते। सालों की मेहनत के बाद यह बना। मरुभूमि में पानी कितना भी कम बरसे घड़सीसर का आगौर वहाँ की एक-एक बूँद को समेटकर तालाब को लबालब भर देता। एक तालाब भरता तो अतिरिक्त पानी दूसरे तालाब में जाता फिर तीसरे, फिर चौथे...। इस तरह नौ तालाब भरने के बाद जो पानी बचता वो छोटे-छोटे कुएँनुमा कुण्डों में भरता।

यह देश का सबसे गरम और सूखा इलाका है। यहाँ साल में लगभग दस दिन ही पानी बरसता है। लेकिन यहाँ के लोगों ने दस दिनों की बारिश में करोड़ों बूँदों को देखा। घर-घर, गाँव-गाँव शहरों तक में इन्हें इकट्ठा करने के तरीके खोजे और अपने लिए साल भर के पानी का इन्तज़ाम किया।

(साभारः *आज भी खरे हैं तालाब* लेखकः अनुपम मिश्र)

बिरधीचन्द ऊँट से उतरा और टोपी की तरफ बढ़ा। लेकिन जैसे ही उसने टोपी उठाई उसका मुँह खुला का खुला रह गया। टोपी के नीचे एक आदमी का सर जो था। वो यह देखकर चक्कर में पड़ गया। उसने आव देखा ना ताव और वह जल्दी-जल्दी टोपी के चारों तरफ की रेत अपने हाथों से खोदने लगा। कुछ ही मिनट की खुदाई में एक आदमी का पूरा का पूरा चेहरा रेत में से बाहर निकल आया। यह देखकर बिरधीचन्द को जोश आ गया और वो और दम-खम लगाकर रेत हटाने लगा।

लेकिन इस बीच जिस आदमी का चेहरा रेत में से बाहर निकला था वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा, "भाई सां हाथों से काम नहीं चलेगा फावड़े लाओ फावड़े।" बिरधीचन्द ने रेत हटाना छोड़कर पूछा, "क्यों भाई ऐसी भी क्या बात है?" यह सुनकर रेत में दबा आदमी बोला, "मैं भी ऊँट पर बैठा हूँ।"

इस लेख का पहला हिस्सा *चकमक* के मई अंक में छपा था। प्रस्तुत है बाकी हिस्सा...

और फिर आया दिवाली का दिन। उस दिन हम हिन्दुस्तान की आखिरी सीमा (बॉर्डर) देखने गए। बॉर्डर जैसलमेर से कोई 100-130 किलोमीटर दूर है। रास्ते में पहले आता है – रामगढ़। यह एक छोटा-सा कस्बा है। यहीं से बी.एस.एफ. (सीमा सुरक्षा बल) का इलाका शुरू हो जाता है। जैसलमेर से करीब 110 किलोमीटर दूर है तनोट। यहाँ भी बी.एस.एफ. की एक बड़ी चौकी है। यहाँ से सीमा काफी नज़दीक है। सीमा पर तैनात इन जवानों के साथ हमने सीमारेखा देखी। अब तो सारी सीमा पर तारबन्दी हो गई है। एक तरफ से दूसरी तरफ जाना बहुत मुश्किल है। लेकिन देखो तो दोनों ओर एक जैसा ही सब कुछ दिखता है। ज़मीन एक, धूप एक, रूखापन एक, धूल भरी हवाएँ एक... देखकर लगा कि फिर अलग क्या है? पानी की किल्लत और ज़रूरतें दोनों तरफ एक जैसी हैं। अब तो जानवर भी दूसरी तरफ घास चरने नहीं जा सकते।

बॉर्डर से वापस आते हुए हमने किशनगढ़ का किला देखा। बहुत ही सुन्दर किला है। हालाँकि साफ-सफाई के अभाव में अब यह बर्बाद हो रहा है। यहाँ हमें किशनगढ़ के आसपास के गाँवों के कुछ लोग भी मिले। ये बी.एस.एफ. वालों से इजाज़त माँग रहे थे जिससे उनके मवेशी आराम से चर सकें। कुछ समय से बी.एस.एफ. की चौकी और सुरक्षा व्यवस्था बढ़ गई है। इस कारण मवेशियों को बॉर्डर के ज़्यादा पास नहीं जाने देते हैं। लेकिन गाँव वाले कह रहे थे कि अच्छी घास उस इलाके में ही ज़्यादा उगती है। देशों की लड़ाई का नुकसान सिर्फ इंसानों को ही नहीं, जानवरों को भी होता है।

बॉर्डर की यात्रा में हमारे साथ थे बन्नेसिंह जी। वे राजस्थान पुलिस में काम करते हैं और जैसलमेर के रहने वाले हैं। बन्नेसिंह जी ने हमें कई मज़ेदार किस्से सुनाए। उनका कहना है कि पूरे जैसलमेर में एक भी ऐसा शख्स ऐसानहीं जिसे वे ना जानते हों। उन्होंने बताया कि एक ऊँट की कीमत 15-20 हज़ार होती है। और एक आदमी के पास यहाँ 100 ऊँट भी होते हैं। बहुतों के पास तो उससे भी ज़्यादा। तो मैंने पूछा कि इसका मतलब तो यहाँ लखपति, करोड़पति लोग रहते हैं? इसके जवाब में बन्नेसिंह ने जो कहानी सुनाई वो मैं तुम्हें भी सुनाता हूँ....

लिटिल टेरेरिस्ट
उर्फ नन्हा आतंकी

अश्विन कुमार की फिल्म *लिटिल टेरेरिस्ट* कहानी है तुम्हारी ही उमर के एक लड़के जमाल की। जमाल का गाँव हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सीमा पर बसा है। जमाल क्रिकेट का शौकीन है। एक दिन जमाल अपने दोस्तों के साथ क्रिकेट खेल रहा होता है कि उसकी गेंद सीमा पार हिन्दुस्तान में चली जाती है। जमाल उसे लेने जब कँटीले तारों को पार कर उस तरफ जाता है तो सुरक्षा प्रहरी उसे

आतंकवादी समझ कर उस पर गोलियाँ चलाते हैं। जमाल डर कर एक टीले की ओट में छिप जाता है। यहीं उसे उस गाँव में रहने वाले मास्टर जी मिलते हैं। मास्टर जी उसे अपने साथ घर ले आते हैं। और बताते हैं कि जब हिन्दुस्तान और पाकिस्तान एक मुल्क थे तब ये दोनों गाँव भी एक थे। मास्टर जी उसे यह भी बताते हैं कि मैंने भी अपने बचपन में उसी पेड़ के नीचे क्रिकेट खेली है जहाँ तुम खेलते हो। रात में मास्टर जी उसे बारूदी सुरंगों से बचाते हुए उसके गाँव छोड़कर आते हैं। जमाल वापिस अपने गाँव, अपने घर पहुँच जाता है। और मास्टर जी को हमेशा याद रखता है।

लिटिल टेरेरिस्ट को 2005 में ऑस्कर पुरस्कारों के लिए नामांकित किया गया है। इस फिल्म की लम्बाई भले ही 15 मिनट की हो लेकिन इसकी कहानी दिल को कहीं गहरे तक छू लेने वाली है। रेगिस्तान से एक और तोहफा है यह फिल्म और वो भी तुम्हारे लिए।

मेरे एक चाचा सां थे। ऐसे ही एक लखपति। नाम था ठोकरदास। उन्हें पड़ोस के एक गाँव से कुछ बकाया पैसा लेना था। गाँव दूर था तो वे सुबह-सुबह मुँह धोकर अँधेरे ही घर से निकल गए। ठोकरदास सां जब दूसरे गाँव पहुँचे तो दोपहर हो रही थी। पैसा तो उन्होंने वापस ले लिया, पूरे 2 लाख लेकिन इस बीच मौसम कुछ बिगड़ने लगा था। तूफान आने की सम्भावना थी। पर ठोकरदास सां पैसे के साथ दूसरे गाँव में नहीं रुकना चाहते थे तो वे वापिस चल पड़े। उन्हें अपने गाँव का रास्ता अच्छी तरह से याद था और यकीन था कि रात तक सही सलामत पहुँच जाएँगे। शाम होते-होते तूफान ज़ोर पकड़ने लगा। ऐसे धूल के तूफान में रेगिस्तान में क्या हालत होती है मालूम है? रेत के टीले अपनी जगह बदल लेते हैं। तो ऐसे ही रेत के टीलों ने अपनी जगह बदल ली और ठोकरदास सां अपने गाँव का रास्ता भूल गए। अगले तीन दिन वो रेगिस्तान में भटकते रहे और आखिर में प्यास ने उनकी जान ले ली। उस वक्त उनके और गाँव के बीच सिर्फ एक रेत का टीला था। बाद में उनके पास से 2 लाख रुपए मिले जो वे साथ लेकर आ रहे थे।

बन्नेसिंह जी ने यह कहानी सुनाकर हमसे पूछा कि बताओ कौन हुआ लखपति? ठोकर सां के पास तो इतने रुपए थे लेकिन पानी से ज़्यादा कीमती और कोई चीज़ नहीं है प्यारे! और इस यात्रा में हमें भी समझ आ गया कि दुनिया की सबसे कीमती चीज़ पानी है। तेज़ धूप में वहाँ दूर से रेत में पानी दिखता है। पास पहुँचो तो गायब। इसे मृग मरीचिका कहते हैं। इसके पीछे दौड़ते रहो, वो कभी हाथ नहीं आती। और हम, जिन्हें पानी आसानी से नसीब हो जाता है, इसकी अहमियत कभी समझ नहीं पाते। हाँ, जैसलमेर ज़रूर तीन दिन में यह समझा देता है!